International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

प्राचीन भारत में राज्य का आंगिक स्वरूप मनु, कौटिल्य शुक्र एवं याज्ञवल्क्य

Dr. Ganpat Ram Suthar

Associate Professor, SBK Govt. PG College, Jaisalmer, Rajasthan, India

सार

प्राचीन भारत में राजत्व सम्बन्धी चिन्तन तथा उसके स्वरूप के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों में बड़ी भ्रामक धारणा रही है। उनकी यूरोकेन्द्रीयता भारतीय राजदर्शन की श्रेष्ठता को स्वीकार करने में सबसे बड़ी बाधा थी। पश्चिम के कई विद्वानों ने प्राचीन भारतीय राजनीतिक दर्शन को यह कहकर खारिज कर दिया कि भारतीय चिन्तकों और दार्शनिकों की दृष्टि धर्मशास्त्र और आध्यात्मवाद पर केन्द्रित है। यह उनके भारतीय चिन्तन के सतही ज्ञान को दर्शाने के साथ-साथ उनके पूर्वाग्रह को भी दर्शाता है।

मैक्समूलर, ब्लूमफील्ड और डर्निंग जैसे विद्वानों ने कह दिया कि भारतीय दर्शन में राजनीतिक चिन्तन का अभाव है। ये पश्चिम विद्वान यह मानते थे कि भारतीय दर्शन का स्रोत वस्तुतः हिन्दू साहित्य है। इसके आधार पर ही उन्होंने यह धारणा बना ली कि भारतीय साहित्य में संदिग्ध आदर्शवाद, अव्यावहारिक और पारलौकिक मूर्खतापूर्ण बातों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस भ्रमपूर्ण विचार का कारक भारत पर ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन को भी माना जा सकता है जो भारतीय राजनीतिक चिन्तकों को किसी भी प्रकार का श्रेय नहीं देना चाहते थे। इस तथ्य को एक अन्य पश्चिम विद्वान मैक्सी (Chester Collins Maxey) ने इन शब्दों में स्वीकार किया है-'पाश्चात्य व्याख्याकारों ने पूर्वीय विद्वानों के राजनीतिक विचारों के साथ ही नहीं, प्राचीन हिन्दू राजनैतिक विचारों के साथ भी दुर्व्यहार किया है। हिन्दू राजनैतिक संस्थाओं और विचारों के सम्बन्ध में हमें ऐसे स्रोतों से ज्ञान प्राप्त हुआ है जो भारतीय जीवन और चरित्र के राजनैतिक पहलू पर निष्पक्ष विचार नहीं रख सकते। भारतवंशियों को इस प्रकार देखा गया जैसे वे राजनीतिक उत्तरदायित्व के सर्वथा अयोग्य हैं। दरअसल, अज्ञानवश या फिर जानबूझकर भारतीय विचारकों को या राजनीतिक दार्शनिकों की उपेक्षा की गई है।'

पश्चिम विद्वानों की भारतीय राजनीति के बारे में भ्रमपूर्ण बातें इसलिए भी निराधार साबित हो जाती हैं कि प्लेटो और अरस्तू से शताब्दियों पहले भारतीय राजदर्शन की नींव पड़ चुकी थी। यही नहीं, भारतीय राजनीतिक दर्शन का इतिहास भी उतना ही पुराना है जितनी यहाँ की सभ्यताएँ, संस्कृति और धर्म आदि। प्राचीन यूनानी राजनीतिक चिंतन के महत्वपूर्ण स्रोत प्लेटो की रचनाएँ-"रिपब्लिक" , "स्टेट्समैन" तथा "लॉज" मानी जातीं है तथा अरस्तू की रचना "पॉलिटिक्स" मानी जाती हैं तो भारतीय राजनीतिक चिंतन के स्रोत वैदिक साहित्य, जैन एवं बौद्ध साहित्य, कौटिल्य का 'अर्थशात्र', कामन्दक का 'नीतिसार', शुक्राचार्य का 'शुक्रनीति', रामायण और महाभारत जैसे ग्रन्थ हैं। ऋग्वेद और अथर्ववेद में राजशास्त्र से संबंधित कई श्लोक हैं। ज्ञान-विज्ञान ही नहीं, राजनीति के मामले में भी भारत किसी भी देश से कमतर नहीं रहा है। जिस तरह यूनानी विद्वान अरस्तू के राजनीतिक विचारों को महत्वपूर्ण समझते हैं, उसी तरह भारत में अरस्तू के समकालीन भारतीय राजनीतिक चिन्तक कौटिल्य का महत्व है। मैक्सी तो यहाँ तक कहता है कि भारत का राजनीतिक इतिहास यूरोप के इतिहास से भी अधिक प्राचीन है जबकि गैटिल (R.G. Gettel) भी भारतीय साहित्य में राजनीतिक दर्शन की महत्ता को स्वीकार करता है और इसे ज्ञान की एक पृथक शाखा मानता है।

परिचय

सामान्यतः राजनीतिक चिन्तन को केवल पश्चिम की ही परम्परा एवं थाती माना जाता है परन्तु भारत की लगभग पाँच हजार वर्षों से भी अधिक प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति में राजनीतिक चिन्तन की पर्याप्त गौरवशाली परम्परा रही है। पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन की तुलना में भारतीय राजदर्शन व्यापक धर्म की अवधारणा से समृद्ध है तथा उसका स्वरूप मुख्यतः आध्यात्मिक एवं नैतिक है। मनु, कौटिल्य तथा शुक्र के चिन्तन में धर्म, आध्यात्म, इहलोक संसार, समाज, मानव जीवन, राज्य संगठन आदि के एकत्व एवम् पारस्परिक सम्बन्धों का तानाबाना पाया गया है।

आधुनिक काल में भारतीय राजनीतिक दर्शन और संस्कृति के व्यवस्थित अध्ययन का आरम्भ १८वीं शताब्दी के अन्त में मानी जाती है। सन् 1784 में बंगाल में एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना होने के बाद राजनीतिक विचारों को एक नई दिशा मिली। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस सोसायटी की स्थापना में ब्रिटिश हित भी छिपे हुये थे जो अपनी सत्ता को सुदृढ करने के लिए भारतीय परम्पराओं और उसके इतिहास का परिचय प्राप्त करना चाहते थे। लेकिन एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना से भारतीय राजनीति को भी हवा मिली। 19वीं शताब्दी के आरम्भ में दर्शन और धर्म के अनेक प्राचीन ग्रन्थों का संस्कृत से अंग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद कर लिया गया था।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

पश्चिम के वर्चस्व को स्वीकार करते हुए अंग्रेजी सभ्यता, संस्कृति, राजनीति एवं उद्योगवाद को देखकर उनकी सफलता तथा अपनी दयनीय दुरावस्था के कारकों को समझने का प्रयास राजा राममोहन राय ने किया। दयानन्द सरस्वती ने वेद, वैदिक सभ्यता और संस्कृति के गौरवपूर्ण वैभव को पुनः प्राप्त करने के लिए विवेकपूर्ण सनातन आर्य धर्म का मार्ग प्रशस्त किया।

पाश्चात्य विद्वानों के भ्रम का एक मुख्य कारण यह भी था कि वे प्राचीन भारतीय वाङ्मय में से राजशास्त्र पर पृथक् ग्रंथ ढूँढने लगे, जबकि वास्तविकता यह थी कि नीतिशास्त्र अथवा राजशास्त्र (राजधर्म) उस सार्वभौमिक और व्यापक धर्म का अंश था जो व्यक्ति, समाज और राज्य सभी के कार्यकलापों का नियमन करता था। बीसवीं शती में कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र के प्रकाशन के पश्चात् यह तथ्य प्रमाणित हो चुका है कि राजत्व, राजनय, राजनीति आदि का अध्ययन प्राचीन भारत में एक विशेष विषय के रूप में महत्व प्राप्त था। प्राचीन काल से ही भारत में राज्य एक वृहद समाज का अंग समझा जाता था। प्राचीन भारतीय विचारकों ने जीवन एवं जगत् के सर्वांग का विचार कर उसके अनुरूप शास्त्र और व्यवस्थाओं का नियमन किया। यही कारण है कि भारत में व्यापक चिन्तन एवं शास्त्र प्रणीत हुए। वैदिक वाङ्मय पुराण, जैन एवं बौद्ध साहित्य, धर्मशास्त्र, नीति-शास्त्र, अभिलेख मुद्राएँ आदि राजत्व सम्बन्धी भारतीय विचारों के आधार एवं आकार ग्रंथ हैं।[1,2]

पश्चिम के विद्वानों को भारतीय राज व्यवस्था पर सवाल उठाने का मौका इसलिए भी मिल जाता है क्योंकि प्राचीन भारत में इस विषय को दूसरे नामों से जाना-समझा गया। महाभारत के 'शांतिपर्व' में इसे राजधर्म की संज्ञा दी गई तो अन्य जगह यह दण्डनीति, नीतिशास्त्र या फिर अर्थशास्त्र आदि नामों के रूप में आया।

देखा जाये तो प्राचीन भारत में राज-शासन का ही अधिक महत्व था। राजाओं के अपने नियम-कानून और कर्तव्य थे, इन्हें ही राजधर्म कहा जाता था। वर्तमान परिभाषाओं में भी देखें तो राजशास्त्र का मतलब राज्य और शासन के अध्ययन में ही समाहित हैं, इसलिए राजधर्म को भी राजशास्त्र ही समझना अधिक समीचीन होगा। प्राचीन भारत में एक और शब्द 'दण्डनीति' आता है। इसका सम्बन्ध भी शासन के कार्यों अथवा शासन तन्त्र से ही रहा। इसे 'प्रशासन का शास्त्र' भी कहा गया। कौटिल्य का मानना है कि मनु, वृहस्पति और शुक्राचार्य द्वारा वर्णित चार विद्याओं में से दण्डनीति एक है। प्राचीन भारतीय विचारकों का मानना था कि प्रभुसत्ता ही राज्य का आधार है। इसलिए भारतीय विचारक मानते थे कि बिना दण्ड के किसी प्रकार के राज्य का अस्तित्व सम्भव नहीं है। दण्डनीति का समर्थक मनु कहते हैं कि 'जब सभी लोग सो रहे होते हैं तो दण्ड उनकी रक्षा करता है। उसी के भय से लोग न्याय का मार्ग अपनाते हैं।' उशनस् तथा प्रजापति द्वारा शासनतन्त्र पर लिखित ग्रंथ भी 'दण्डनीति' के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। डॉ. जायसवाल इस दण्ड नीति को "सरकार के सिद्धान्त" (Principles of Government) नाम देते हैं।

प्राचीन भारत में अर्थशास्त्र को राजशास्त्र के अन्तर्गत माना गया है। विद्वानों में विभ्रम की एक वजह यह भी हमेशा बनी रही। वर्तमान समय में अर्थशास्त्र शब्द का प्रयोग आमतौर पर धन व अर्थ सम्बन्धी अध्ययन के लिए किया जाता है जबकि कौटिल्य का मानना है कि 'अर्थ' शब्द से जिस तरह मनुष्य के व्यवसाय व धंधे का आशय निकलता है, ठीक उसी तरह वे जिस भूमि पर रहकर व्यवसाय चलाते हैं वह भूमि भी सम्बोधित हो सकती है, इसलिए भूमि को प्राप्त करने व उसका पालन करने का जो साधन है, उसे भी अर्थशास्त्र कहना उचित है। अर्थशास्त्र को नीतिशास्त्र अथवा दण्डनीति के ही अर्थ में लिए जाने की एक और भी वजह रही क्योंकि राज्य व शासन के विषय पर प्राचीन भारत में लिखा गया सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ अर्थशास्त्र के नाम से ही पुकारा गया। शुक्रनीति में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि अर्थशास्त्र का क्षेत्र केवल धन-सम्पत्ति प्राप्त करने के उपायों का विवेचन करना ही नहीं नहीं है, बल्कि शासक शास्त्र के सिद्धान्तों को भी प्रस्थापित करता है। अमरकोश में भी अर्थशास्त्र और दण्डनीति को समानार्थक माना गया है। हालांकि 'अर्थशास्त्र' के प्रथम अध्याय पर गौर करें तो प्रतीत होता है कि कौटिल्य 'दण्डनीति' को ही महत्व देता है और उसे यही नाम देना चाहता है।

प्रचीन भारतीय ऋषि परम्परा, चिन्तन मनन एवं उनके शास्त्रीय स्वरूप के प्रणयन में अग्रणी रही है। यद्यपि उनके राजनीति विषयक विचार मुख्य विषय के रूप में प्रतिपादित नहीं थे तथापि वैदिक मंत्र स्वयं में विचारों की विपुल राशि माने गये हैं जिनमें जीवन के विविध पक्षों का चिन्तन हुआ है। इन्ही विचारों की जीविका पर कालान्तर मे जब राज्यों, राष्ट्रों तथा उनकी शासन प्रणालियों का विकास हुआ तो स्वतंत्र रूप से एक आचार्य परम्परा भी विकसित हुई जिसने राजनीतिक विषयों पर तत्युगीन विचारों का प्रतिपादन किया। यद्यपि राजत्व सम्बन्धी स्वतंत्र ग्रंथ कम हैं फिर भी जो थोड़े ग्रंथ उपलब्ध हैं, उनके रचनाकारों, प्रणेताओं तथा चिन्तकों ने राजनीतिक विचारों को महत्व के साथ प्रतिपादित किया है। वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत आदि में प्रसंगतः इन विचारों का उल्लेख हुआ है।

प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारों का परिचय चतुर्थ शदी ई. पू. के महान आचार्य एवं विचारक कौटिल्य (अन्य नाम चाणक्य एवं विष्णुगुप्त) के 'अर्थशास्त्र' नामक गर्न्थ के प्रथम वाक्य से मिल जाता है, जिसमें पूर्ववर्ती आचार्यों तथा उनके विचारों को उद्धृत किया गया है। इनमें भारद्वाज, विशालाक्ष, पराशर, विशुन, कौणदन्त, वातव्याधि, बाहुदन्तीपुत्र, कणिङ्क, कात्यायन, घोटमुख, दीर्घ चारायण, विशुनपुत्र और किंजल्क उल्लिखित हैं। इनके मतों का उद्धरण दिया गया है जिससे यह ज्ञात होता है कि राजत्वविषयक विचारों का दीर्घकालीन इतिहास रहा है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में विचार-सम्प्रदायों की सत्ता विद्यमान थी। इनकी परम्परा का आधार गुरु-शिष्य परम्परा रही है। कौटिल्य अपने युग के महान् राजनीतिक विचारक थे। अर्थशास्त्र में उन्होने अनेक विचारकों के मतों का उल्लेख उनके विचार सम्प्रदायों के साथ किया है जैसे- मानवाः, बार्हस्पत्याः, औशनसाः, पाराशराः, आम्भीयाः आदि। इन्ही के साथ "आचार्याः अपरे", "एके" - इन शब्दों के प्रयोग के द्वारा भी कौटिल्य ने पूर्ववर्ती मतों को

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

उद्धृत किया है। इससे यह स्पस्ट होता है कि प्राचीन काल में राजनीतिक विचारों का अपना एक इतिहास रहा है। महाकाव्यों में महाभारत एक ऐसा आकार ग्रंथ है जिसमें राजशास्त्र विचारकों तथा इस विषय के प्रणेताओं के नामोल्लेख मिलते हैं यथा- विशालाक्ष, इन्द्र, बृहस्पति, अनु, शुक्र, भारद्वाज, गौरशिरा, मातरिश्वा, कश्यप, वैश्रवण, उतध्य, वामदेव, शम्बर, कालकवृक्षीय, वसुहोम और कामन्दक। इनमें से दस आचार्य नवीन है तथा छः आचार्यों के नाम कौटिल्य ने भी उद्धृत किए हैं। उदाहरणार्थ विशालाक्ष के नीतिशास्त्र में दस हजार, इन्द्र के नीतिशास्त्र में पाँच हजार, और बृहस्पति के अर्थशास्त्र में तीन हजार अध्याय थे।[3,4]

महाभारत के ही शांतिपर्व में कीर्तिमान्, कर्दम, अनंग, अतिवल, वैण्य, पुरोधा काव्य और योगाचार्य नामक राजनीतिक विचारकों का भी विवरण मिलता है। इसके अतिरिक्त राजशास्त्र विचारक मनु, उशना, मरुत और प्राचेतस के द्वारा रचित श्लोकों का भी तत्सम उद्धरण मिलता है। इसी प्रकार कामन्दक ने नीतिसार में प्राचीन भारतीय राजशास्त्र विचारकों को उद्धृत किया है। यद्यपि 'मय' एवं 'पुलोमा' को छोड़कर अन्य पूर्ववर्ती हैं। इसी प्रकार चण्डेश्वर के 'राजनीति रत्नाकर' में अनेक आचार्यों और उनके ग्रंथों के मत प्रमाण-स्वरूप उद्धृत हैं। व्यास, कात्यायन, नारद, कुल्लूकभट्ट जैसे विचारक आचार्यों के ग्रंथ तो उपलब्ध नहीं हैं किन्तु उनके उद्धरण अवश्य मिलतें हैं।

प्रख्यातविचारक मनु द्वारा रचित मनुस्मृति एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है जिसमें विविध सामाजिक एवं राजनीतिक विषयोंपर विचार प्रगट हैं। मित्रमिश्र द्वारा रचित 'वीरमित्रोदय' में विज्ञानेश्वर, बृहत्पाराशर, अपरार्क, गोतमबृहस्पति नारद, अंगिरा और कात्यायन के नामोल्लेख हैं। इसी प्रकार मध्यकाल में सोमदेवसूरि (नीतिवाक्यामृतम् तथा यशस्तिलकचम्पू) भी एक महत्वपूर्ण विचारक आचार्य थे। इनकी विशेषता यह थी कि ये आचार्य कौटिल्य और कामन्दक से तो परिचित थे ही, इनके अतिरिक्त गुरू, शुक्र, विशालाक्ष, परीक्षित, पराशर, भीम, भीष्म, भारद्वाज आदि प्राचीन आचार्यों के ग्रंथों से भी परिचित थे। इन विवरणों से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में ऐसे विचारक, मनीषी आचार्यों तथा उनके विचार सम्प्रदायों की सत्ता थी जिन्होने राजत्व, राजनय, राजनीति के शास्त्रों को तो विकसित किया ही, वे उस विचार-परम्परा के महत्वपूर्ण अधिष्ठान भी थे।

प्राचीन भारतीय राजत्व के विचारको की लम्बी सूची मिलती है। वैदिक, जैन, बौद्ध सभी चिन्तनपरम्पराओं में इसके स्वरूप मिलते हैं। किन्तु मुख्य रूप से कौटिल्य, मनु, याज्ञवल्क्य, शुक्र तथा कामन्दक को राजनय परम्परा के महत्वपूर्ण विचारकों तथा शास्त्र प्रणेताओं में परिभाषित किया गया है। आचार्य कौटिल्य ने अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र में अपने समय की समस्त राजनीतिक विचारों की समालोचना की है। यह राजव्यवस्था के लिए एक विधिक ग्रंथ है। कौटिल्य के विचारों में अर्थशास्त्र के प्रकाश में एक व्यक्ति न केवल औचित्य, मितव्ययता एवं सौन्दर्यपूर्ण कार्यों को सम्पन्न कर सकता है अपितु वह अनुचित, अमितव्ययतापूर्ण और असुन्दर कार्यों को छोड़ भी सकता है। इस ग्रंथ में स्वाभाविक एवं कृत्रिम शास्त्रों के बीच धर्म और अधर्म के बीच, नय और अनय के बीच तथा उचित और अनुचित के बीच अन्तर बतलाया गया है। इस ग्रंथ के प्रणयन में आचार्य कौटिल्य ने तत्युगीन राजनीति के ग्रंथों पर ही ध्यान केन्द्रित नहीं किया वरन इसे अपने उस व्यक्तिगत अनुभव एवं ज्ञान पर भी आश्रित रखा जो तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति और संस्थाओं का अध्ययन भी करने पर प्राप्त किया था। वे पाश्चात्य जगत् की राजनीतिक विचारधाराओं से भी परिचित थे। तक्षशिला विश्वविद्यालय के इस महान विचारक आचार्य ने राष्ट्रीय एकत्व और सुशासन के लिए पाटलिपुत्र को केन्द्र बनाकर जो कार्य किया वह प्राचीन भारतीय विचारों के इतिहास में एक क्रांतिकारी कदम था। अर्थशास्त्र की खोज ने आचार्य चाणक्य की प्रखर मेधा को प्रकाशित किया है।

अब यह स्पस्ट हो चुका है कि भारत ने उन राजनीतिक विचारों को बहुत पहले ही अभिव्यक्त कर दिया था जो आज पश्चिमी विचारकों यथा- प्लेटो, अरस्तू के नाम संलग्न हैं। मौर्य शासक चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरु और प्रधान अमात्य आचार्य चाणक्य ने राजत्व के सभी अंगों पर अत्यन्त सूक्ष्म निर्देश दिया है। कुल 15 अधिकरणों तथा 150 अध्यायों में विभाजित अर्थशास्त्र राजनीति की समस्याओं के प्रतिवैचारिक दृष्टिकोण का चित्रित रूप प्रस्तुत करता है। इसमें राजनीतिक विचारों का उल्लेख अग्रिम अध्यायों के प्रसंगानुसार विभिन्न स्थानों पर किया गया है। इसमें राज्य की उत्पत्ति और स्वरूप, राज्यों के प्रकार, राज्य के उद्देश्य, राजा और राजपद, उत्तराधिकार, मंत्रिपरिषद, स्थानीय प्रशासन, न्यायिक व्यवस्था, दण्डनीति, आर्थिक नीति, दौत्य सम्बन्ध, गुप्तचर व्यवस्था, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, धर्म और नैतिकता आदि पर पर्याप्त विचार और नीति निर्देशित हैं।

इसी क्रम में प्रमुख विचारक आचार्यों में मुख्य स्मृतिकारों यथा मनु और याज्ञवल्क्य का उल्लेख किया जाता है। मनु (ईसा पूर्व 200 से ई. 200 के मध्य) के ग्रंथ मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य के ग्रंथ (ई.पू. 150 से 200 के मध्य) 'याज्ञवल्क्य स्मृति' में राजनीतिक विचारों का संग्रह है। दोनो ही स्मृतियों में समाज, राज्य, शासन, न्याय-व्यवस्था, कर-व्यवस्था, परराष्ट्र सम्बन्ध आदि पर काफी लिख गया है। इनमें उल्लिखित राज्य एवं शासन सम्बन्धी विचार भारतीय चिन्तन प्रणाली के श्रेष्ठ स्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं।

कौटिल्यीय अर्थशास्त्र की परम्परा में गुप्तकालीन ग्रंथ कामन्दकीय नीतिसार तथा शुक्रनीति महत्वपूर्ण हैं जिनकी रचना आचार्य कामन्दक तथा शुक्र ने की । यद्यपि राजशास्त्र पर कार्य करने वाले विद्वान् इन ग्रंथों के रचनाकाल को लेकर एकमत नहीं है। डॉ. काशीप्रसाद जयसवाल तथा डॉ. अनन्तसदाशिव अल्तेकर इसकी रचना छठीं-सातवी शती ई. के मध्य स्वीकारते हैं। इसी प्रकार शुक्रनीति की रचना डॉ. यू.एन. घोषाल 12वीं से 16वीं शती ई. के मध्य तथा डॉ. लल्लन जी गोपाल 19वीं शताब्दी मानतें हैं। इन ग्रंथों में दण्डनीति, राजा, राज्य, शासन, न्याय, कोष आदि पर पर्याप्त विचार किया गयाहै।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

राजत्व सम्बन्धी विचारों पर केन्द्रित उपर्युक्त आचार्यों द्वारा प्रणीत ग्रंथों के अतिरिक्त सोमदेवसूरि (नीतिवाक्यामृतम्), मित्रमिश्र (वीरमित्रोदय), चण्डेश्वर (राजनीति रत्नाकर) नीलकण्ठ (नीतिमयूख), भोजकृत (युक्तिकल्पतरू) और बृहस्पति सूत्र भी यद्यपि परवर्ती हैं। फिर भी प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारों की श्रृंखला में पर्याप्त सामग्रियां देतें हैं। इनके अतिरिक्त वैदिक परम्परा के ग्रंथ, संस्कृत साहित्य, जैन एवं बौद्ध साहित्य, पाणिनि की अष्टाध्यायी, शिलालेख, ताम्रलेख आदि में भी पर्याप्त सूचनाएँ मिलतीं है, जिनसे प्राचीन भारत के राजत्व सम्बन्धी विचारकों के सम्बन्ध में सूचनाएँ मिलती हैं। प्राचीन भारतीय विचारों के ऐतिहासिक अध्ययन के क्रम में राजत्व सम्बन्धी विचारों के विशेष संदर्भ में यह कहना समीचीन होगा कि हिन्दू राजनीतिक विचारकों ने ग्रंथ प्रणयन में विचारों की अपेक्षा राजनीतिक संस्थाओं को केन्द्र में रखकर उनके महत्व, संगठन तथा कार्यप्रणाली पर विशद् प्रकाश डाला है। अनेक ऐसे विषय हैं जिनका प्रसंगतः ही उल्लेख हो जाता है। इसीलिए विभिन्न स्रोतों से उन विषयों का विवेचन करना पड़ता है। लेखन की अपेक्षा व्यावहारिक निर्देश भी आचार्यों के ग्रंथों की अनुपलब्धता का कारण रहा है। फिर भी इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत में राजनीतिक विचारकों की श्रेष्ठ परम्परा रही है जो आज भी राजनयिक संदर्भो में उपयोगी है।

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं-

- प्राचीन भारत में राजनीति के विविध नाम थे : प्राचीन भारत में राजशास्त्र को 'राजधर्म', 'दंडनीति', 'अर्थशास्त्र' और 'नीतिशास्त्र' आदि नामों से संबोधित किया गया। पाश्चात्य जगत की तरह इसका कोई एक निश्चित नाम नहीं है।

  राजधर्म – महाभारत के 'शांतिपर्व' में राजनीति को "राजधर्म" कहा गया है। प्राचीन भारत में राजतंत्र ही सबसे अधिक प्रचलित था, अत: राज्य और शासन के अध्ययन को राजा का धर्म कहा गया। राजधर्म में राजा के सभी कर्तव्य और शासन सम्बन्धी बाते सम्मिलित की गयी थी ।

  दण्डनीति – इसे प्राचीन भारत में "प्रशासन का शस्त्र" समझा गया जिसका सम्बन्ध शासन के कार्यों अथवा शासन-तंत्र से रहा। कौटिल्य के मतानुसार मतानुसार बल प्रयोग या दण्ड के बिना कोई राज्य कायम नहीं रखा जा सकता। दण्ड के सम्बन्ध मे मनु ने कहा है कि कब सभी लोग सो रहे होते हैं तो दण्ड उनकी रक्षा करता है। उसी के भय से लोग न्याय का मार्ग अपनाते हैं।

  अर्थशास्त्र – वर्तमान समय में 'अर्थशास्त्र' शब्द का प्रयोग प्रायः संपत्तिशास्त्र (economics) के लिए किया जाता है जिसका अध्ययन विषय धन व अर्थ की प्राप्ति के साधन तथा मनुष्य के हित में प्रयोग है। इसके विपरीत राज्यशास्त्र का अध्ययन विषय राज्य व शासन है। अतएव दोनों में बड़ा अंतर है। किन्तु कौटिल्य का कथन है कि 'अर्थ' शब्द से जैसे मनुष्य के व्यवसाय व धन्धे का बोध होता है, वैसे ही जिस भूमि पर रहकर वे व्यवसाय चलते हैं वह भूमि भी संबोधित हो सकती है, इसलिए भूमि को प्राप्त करने व उसका पालन करने का जो साधन है , उसे भी अर्थशास्त्र कहना उचित है । इस प्रकार इसे अर्थशास्त्र की भी संज्ञा दी गयी।

  नीतिशास्त्र – जो शस्त्र भलाई-बुराई में भेद करे तथा उचित-अनुचित कार्यों का उल्लेख करे उसे 'नीतिशास्त्र' कहा जाता है। यह मार्गदर्शन मानव जीवन के किसी भी क्षेत्र में किया जा सकता है। राजनैतिक क्षेत्र में किए गए मार्गदर्शन के लिए भी नीतिशास्त्र शब्द का प्रयोग कर दिया जाता था। कामन्दक तथा शुक्र के राज्य एवं शासन के सम्बन्ध में जो रचनाएँ हैं उनको नीतिशास्त्र का नाम दिया है (शुक्रनीति, कामन्दकीय नीतिशास्त्र)। कामन्दक के समय जो 'नीति' शब्द राज्य की नीति के सम्बन्ध में प्रयुक्त किया जाता था वही अब सामान्य आचरण के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा।[5,6]

- भारतीय राजदर्शन आदर्शवादी न होकर व्यावहारिक : भारतीय राजदर्शन में आदर्श राज्य (यूटोपिया) सम्बन्धी काल्पनिक विचारों का सर्वथा अभाव है। जिस प्रकार पाश्चात्य जगत में प्लेटो के 'रिपब्लिक' और सर टौमस मूर के 'यूटोपिया' हैं, वैसे ग्रंथ प्राचीन भारत में किसी ने नहीं लिखे। इसी आधार पर यह कहना उचित होगा कि प्राचीन भारत की रचनाओं का दृष्टिकोण व्यावहारिक था, कोरा सैद्धांतिक या काल्पनिक नहीं। ए० के० सेन ने लिखा है "हिन्दू राजनीतिक चिंतन उत्कृष्ट वास्तविकता से भरा पड़ा है और कुछ राजनीतिक अपवादों को छोड़कर भारतीय राजनीतिक विचारों का सम्बन्ध राज्य के सिद्धान्त और दर्शन से उतना नहीं है जितना राज्य की स्थूल समस्याओं से है।" उदाहरण स्वरूप राज्य के सप्तांगों का विचार पूर्ण रीति से व्यावहारिक ढंग से किया गया है और उसमें सेना, कोश तथा मित्र को भी अंग बताया गया है। अथवा विभिन्न राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में मण्डल का विचार, षाडगुणा का विचार (संधि, विग्रह आदि) व्यावहारिक ढंग से किए गए हैं। राजनीति सम्बन्धी अधिकांश भारतीय सिद्धांतों को इन्हीं व्यावहारिक विचारों में से खोज कर निकाला जा सकता है।

- दंडनीति का महत्व : भारतीय दर्शन मानवीय जीवन में आसुरी प्रवित्तियों की प्रबलता को स्वीकार करते हैं और इसी कारण उनके द्वारा दण्ड की शक्ति को बहुत अधिक महत्व दिया गया है। राजनीति में दण्ड के महत्व का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि अनेक विचारकों ने दंडनीति को सर्वाधिक महत्व प्रदान करते हुए अन्य सभी विधाओं को उसी के अधीन रखा है। मनु के कथन के अनुसार दण्ड ही शासन है।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

- विशेष शब्दावली का प्रयोग : भारतीय राजनीति शास्त्र की अपनी शब्दावली है जो वर्तमान कल की पश्चिमी राजनैतिक विचारों पर आधारित शब्दावली से बिलकुल भिन्न है । उदाहरण के लिए राज्य का साप्तांग सिद्धान्त, अंतरराज्य सम्बंध के चार उपाय (साम, दाम, दण्ड तथा भेद), तीन शक्तियाँ (सत्यगुण, रजोगुण तथा तमोगुण), कर्मफल सिद्धान्त, त्रिगुण सिद्धांत, आश्रम व्यवस्था आदि।

- राजनीतिक एवं सामाजिक विषयों में समन्वय : प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में विचारों की एकात्मकता के कारण राज्य, राजा, समाज, व्यवस्था, संस्थान, मनुष्य सभी का निर्माता ईश्वर (ब्रह्मा) है। राज्य एवं राजा की उत्पत्ति का दैवी सिद्धांत, मोक्ष की प्राप्ति राज्य का लक्ष्य होना, सांसरिक जीवन में और पारलौकिक जीवन में आध्यात्मिक एवं नैतिक आचरण, धर्मशास्त्रों के नियमों का समाज में पालक ऐसे सनातन विचार हैं जिसे सामाजिक व्यवस्था एवं राजनीतिक व्यवस्था दोनों में ही समान मान्यता दी गयी है।

- धर्म और राजनीति का घनिष्ठ सम्बन्ध : प्राचीन भारत में राजनीतिक सिद्धान्तों का विकास धर्म के आने के रूप में हुआ। भारतीय विचार में धर्म एक व्यापक शब्द है। उसी कारण हिन्दू राजशास्त्र वेत्ताओं के राजनीति और धर्म एक एक दूसरे से पृथक नहीं किया। इसी कारण धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में राज्य का विचार 'राजशास्त्र' मे नाम से किया गया है अर्थात राजा का और प्रजा का पारस्परिक धर्म, राज्याभिषेक की विधि, राजाओं द्वारा यज्ञ करना, पुरोहित की नियुक्ति, राजकुमारों के संस्कार आदि का वर्णन है। इन धार्मिक पुस्तकों में केवल यही नहीं बताया गया है कि राजा और शासन को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए अपितु मंत्रियों, पुरोहित, सेनापतियों, दूत, न्यायधीश, कर्मचारी और सैनिकों के कर्तव्यों का भी वर्णन है। कर्तव्य और धर्म समानार्थक है, इस कारण भी राज्य सम्बन्धी विचार धर्म से प्रेरित है। इसी कारण प्राचीन भारत की राजनीति में नैतिकता का समावेश रहा और राज्यशास्त्र को नीतिशास्त्र कहकर पुकारा गया। धर्म का रक्षण राज्य का प्रमुख दायित्व था। धर्म और राजनीतिक विचार एक-दूसरे से गुथे हुए हैं। राजनीति और धर्म के पारम्परिक घनिष्ठ संबंध का आभास इसी तथ्य से हो जाता है की जिन ग्रन्थों को प्राचीन भारतीय राजनीति के प्रमुख ग्रंथ माना जाता है वे धार्मिक दृष्टि से पर्याप्त महत्वपूर्ण हैं। वेद, उपनिषद, स्मृतियाँ, महाभारत, रामायण, पुराण आदि साहित्यिक ग्रन्थों का प्राचीन महत्व की राजनीति को समझने के लिए जितना महत्व हैं उससे भी अधिक महत्वपूर्ण इसको धार्मिक दृष्टि से माना जाताहै। बौद्ध जातक एवं जैन धर्म के अनेक ग्रंथ धार्मिक दृष्टि से उपयोगी तथा सार्थक होने के साथ-साथ उस समय की राजनैतिक संस्थाओं एवं विचारों का भी दिग्दर्शन कराते हैं।

- भारतीय ग्रन्थों मे राजनीतिक विचारों की एकता : भारतीय राज्यशास्त्र के ग्रन्थों में राज्य व्यवस्था सम्बन्धी विचारों में समन्वयात्मकता एवं एकता है। पाश्चात्य राजनीतिक विचारों एवं शास्त्रकारों में जो मतभेद और एक दूसरे के विचारों का खण्डन एवं आलोचना दिखाई देता है वैसा भरितीय राजनीतिक ग्रन्थों में हमे दिखाई नहीं देता। विविध ग्रंथ एक से ही विचारों का प्रतिपादन करते हैं। मोक्ष, त्रिगुण सिद्धांत, कर्मफल सिद्धांत, पुरुषार्थ, वर्णाश्रम व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था आदि। विचारों मे मात्रात्मक अन्तर अवश्य है, गुणात्मक नहीं। इसी प्रकार राज्याभिषेक, राजा के दैनिक कार्य, राज्यपद की उत्पत्ति, राज्य के तत्व, अन्तर-राज्य-सम्बन्ध आदि राजनीति विचारों के क्षेत्र में भी मनु, याज्ञवल्क्य और कौटिल्य इन सब में विस्तारपूर्वक विचार करने पर समानता ही दिखाई देगी।

- राजनीतिक व्यवस्था परमात्मा द्वारा रचित : प्राचीन राजनीतिक विचारों को ईश्वर द्वारा रचित माना गया है। इसका यह अर्थ नहीं कि राजा, राज्य, दण्ड, नीतिशास्त्र एवं राजनीति परमात्मा द्वारा निर्मित है। इसका यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि परमात्मा ने स्वयं आकर पृथ्वी पर इनकी रचना की परन्तु इसका इतना ही अर्थ है कि यह सब समाज के लिए लाभप्रद है तथा जिसने भी इनकी रचना की होगी उनमें "परमात्म तत्व" रहा होगा तथा उसके लिए उन्हें परमात्मा से प्रेरणा प्राप्त हुई होगी।

- राज्य एक आवश्यक एवं उपयोगी संस्था है : प्राचीन राजनीतिक विचारकों ने इस बात का समर्थन किया है कि राज्य का होना सामाजिक जीवन में अत्यन्त आवश्यक एवं उपयोगी है। जीवन मे तीनों लक्ष्यों धर्म, अर्थ और काम की राज्य के बिना प्राप्ति संभव नहीं हो सकती, ऐसा माना गया है। भारतीय विचार में राज्य व्यवस्था के महत्व का निरूपण करते हुए माना गया है कि जब राज्य व्यवस्था नष्ट हो जाती है तो समाज बिखर जाता है उसमें 'मत्स्य न्याय' फैल जाता है अर्थात एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति का शोषण होने लगता है। राज्य ने ही समाज को बांधे रखा है इस कारण धर्मशास्त्रों में भी एक अंग के रूप में राजधर्म का वर्णन किया गया है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत में व्यक्तिवादी और अराजकतावादी विचारों का अभाव रहा। अराजक्तावादियों के अनुसार राज्य अनावश्यक और अनुपयोगी है। व्यक्तिवादी राज्य को 'आवश्यक बुराई' मानते हैं। उनके विपरीत प्राचीन भारतीय रजनीतिशास्त्री मानते थे कि राज्य का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत है, जो आज के लोककल्याणकारी राज्य से बहुत साम्य रखता है।

- राज्य मोक्ष प्राप्ति का आधार है : प्राचीन राजनीतिक दर्शन का अध्यात्मिकता ही ओर झुकाव एक प्रमुख विशेषता है कि राज्य को 'मोक्ष' प्राप्ति का साधन माना गया है। राजनीति सिद्धान्तों और राज्य व्यवस्था करते समय यह ध्यान में रखा गया है कि राज्य

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

में चारों ओर सुख-शांति और व्यवस्था हो, क्योकि एसे वातावरण में ही आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है। श्रुति, धर्म सूत्र, स्मृति, इतिहास, पुराण, नीतिशास्त्र के ग्रंथ, बौध्य तथा जैन ग्रंथ आदि सभी के मनुष्य के जीवन का लक्ष्य मोक्ष्य की प्राप्ति बताया है। उसी को ध्यान में रखकर राजनीतिक सिद्धांतों का भी निर्धारण एवं रचना किया गया है। राज्य ही समाज में एसी व्यवस्था लागू करता है जो मनुष्य को मोक्ष की ओर ले जाता है। यह बात महाभारत के शान्तिपर्व, शुक्रनीति तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी कही गयी है जैसे राज्य के द्वारा यज्ञ, देव पूजा, धार्मिक, कार्य में आने वालो वस्तुओं पर कर न लगाना तथा सभी वर्गों से धर्म का पालन करना आदि, इन सभी बातों से स्पष्ट है कि 'राज्य' का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति था।

- राज्य के उद्देश्यों के बारे में आम सहमति : पाश्चात्य राजनीतिक दर्शनिकों में राज्य के ध्येयों के बारे में विभिन्न धारणाएँ प्रचलित हैं जबकि प्राचीन भारतीय राजनीतिक दर्शनिकों के मत में राज्य के ध्येय के बारे में भी सहमति आयी जाती है। सभी प्राचीन विचारक यह मानते हैं कि राजा का प्रथम कर्तव्य धर्म का पालन करना है। धर्म में व्यक्ति का अपना धर्म, वर्ण धर्म और आश्रम धर्म सभी आ जाते हैं। कौटिल्य के अनुसार राजा के लिए यह आदेश था कि वह व्यक्तियों को अपने अपने धर्म से विचलित न होने दे। सभी प्राचीन चिन्तकों के अनुसार राज्य का कर्तव्य न्याय का प्राशसन करना है और राज्य को अपनी प्रजा कि रक्षा करनी चाहिए। राजा के लिए बहुधा यह उपदेश है कि वह अपनी प्रजा के प्रति पितातुल्य व्यवहार करे। राज्य व शासन के ध्येयों के प्रति एकमत होने का परिणाम यह रहा है कि राज्य के कार्यक्षेत्र के बारे में पाश्चात्य जगत की भाँति प्राचीन भारत में विभिन्न 'वाद' उत्पन्न नहीं हुए।

- राजतंत्र की प्रमुखता : भारतीय राजनीतिक विचार मुख्य रूप से राजतंत्र का विचार है। राजनीति का वर्णन करने वाली सभी भारतीय ग्रंथ राज्य व्यवस्था का केंद्र बिन्दु राजा को मानकर तदनुसार सम्पूर्ण विचार करते हैं तथा इसलिए राज्य के सप्तांगो (सात अंगों) में भी सर्वप्रमुख अंग राजा ही बताया गया है। राज्य की उत्पत्ति का भी विचार राजा की सर्वप्रथम नियुक्ति के रूप में बताया गया है। भारतीय विचार में राजतंत्र की दृष्टि से सम्पूर्ण विवेचन है। यूनान के समान यहाँ गणतन्त्र तथा कुलीनतंत्र का विवेचन लगभग नहीं है। महाभारत के दो अध्यायों में तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र के एक अध्याय में तथा बौद्ध, जैन ग्रन्थों में 'गण' अथवा 'संघ' के नाम से इन राजपद्धतियों का कुछ विवेचन है किन्तु प्रमुख रूप से राजतंत्र का ही वर्णन है।

- राजा को सर्वोपरि स्थान : प्राचीन भारतीय राजशास्त्र की एक अन्य विशेषता यह है कि राजा के पद को अत्यधिक उच्च स्थान प्रदान किया गया है। प्रायः सभी चिन्तकों ने राजपद को दैवी माना है और राजा के दैवी गुणों का समावेश किया है। एक प्रकार से राज्य का सार ही राजा होता था। कौटिल्य ने राजा और राज्य के बीच कोई अन्तर नहीं किया। कालिदास ने भी कहा है "विश्व के प्रशासन का कार्यभार स्वयं सृष्टिकर्ता ने राजा के कन्धों पर रखा है"। यदि राज्य में कोई कमी रहती है तो उसके लिए राजा दोषी है। राजा को रात और दिन हर समय कार्य करना पड़ता है। इस सम्बंध में महत्वपूर्ण बात यह है कि राजा को अत्यधिक ऊंचा स्थान देते हुए भी उसे निरंकुशता की स्थिति प्रदान नहीं की गयी है। राजा पर सबसे प्रमुख रूप से धर्म का प्रतिबन्ध है और वह मंत्रिपरिषद कि सलाह लेने के लिए भी बाध्य है।

- प्राचीन भारत में छोटे राज्यों का अस्तित्व था : भारतीय राजनीतिक विचार यह मानकर चलता है कि पृथ्वी अथवा भारतवर्ष भी कई राज्यों में विभाजित है। इसलिए अन्तरराज्य सम्बन्धों के विचार में विजिगीषु (विजय की इच्छा रखने वाला) को केन्द्र मानकर सम्पूर्ण विचार है, जो एक विशेष क्षेत्र पर शासन करता हुआ राजनीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि वह सम्पूर्ण भारत अथवा पृथ्वी पर प्रभुत्व स्थापित कर ले। चक्रवर्तित्व का, (सर्वभौम राज्य का) वर्णन भी इसी दृष्टि से है तथा अश्वमेध यज्ञ का किया जाना भी इस बात को प्रसिद्ध करता है कि विजिगीषु राजा अन्य राजाओं को अपनी शक्ति से पराभूत करता हुआ उन्हे अपने अधीन कर लेगा। भारतीय राजनीतिक विचार का आधार एक ऐसा राज्य है जो बहुत बड़ा नहीं है परन्तु जिसका शासक अन्य राजाओं को अपने अधीन करने के लिए प्रयत्नशील है अर्थात भारतीय राजनीतिक विचार छोटे राज्यों का विचार है। भारतीय राजनीतिक विचार बहुत से छोटे-छोटे राज्यों का विचार होने के कारण तथा भारतीय विचार में एक एकात्मक राज्य का अस्तित्व भर की एकता का आधार नहीं बताया गया है।

- विचारों की अपेक्षा संस्थाओं पर विशेष बल : अनेक विचारकों ने अध्ययन का केंद्र बिन्दु राजनैतिक संस्थाओं को बनाया है। इन संस्थाओं का महत्व, संगठन तथा कार्य आदि का विषद रूप से वर्णन किया गया है।

विचार-विमर्श

पाश्चात्य राजनीतिक आलोचकों ने कई बातों को आधार बनाकर प्राचीन भारतीय राजशास्त्र की आलोचना की है। आलोचना के विवेक में देखा जाये तो इस मामले में पाश्चात्य आलाचकों का पूर्वाग्रह स्पष्ट नजर आता है। उनका सर्वप्रथम उद्देश्य भारतीय राजशास्त्र के स्वतन्त्र अस्तित्व का केवल खण्डन करना ही रहा है, उसके महत्व को आंकना नहीं।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

पाश्चात्य विद्वान डनिंग इन शब्दों में प्राचीन भारतीय राजशास्त्र को खारिज करता है, "भारतीय आर्यों ने अपनी राजनीति को धार्मिक और आध्यात्मवादी पर्यावरण से कभी भी स्वतन्त्र नहीं किया, जिसमें यह आज भी गड़ी है"। जर्मन विद्वान मैक्समूलर का कहना है, "भारतीयों को राष्ट्रीयता की भावना का पता न था। एकमात्र क्षेत्र जिसमें भारतीय मस्तिष्क ने कार्य करने, रचना करने और पूजा करने की स्वतन्त्रता पायी, वह धर्म और दर्शन का क्षेत्र था।"

पाश्चात्य आलोचकों ने प्राचीन भारतीय राजशास्त्र के सन्दर्भ में दूसरा आरोप यह लगाया कि प्राचीन भारत में केवल अर्द्ध स्वेच्छाचारी शासन ही था। हेनरी मेन के शब्दों में कहें तो-"पूर्व के बड़े साम्राज्य मुख्यतः कर एकत्रित करने वाली संस्थाएं भर थीं। समय-समय पर किसी प्रयोजनवश वह प्रजाओं पर हिंसा बल का भी प्रयोग करते थे लेकिन वह प्रथागत कानूनों को न्यायिक ढंग से लागू व प्रशासित नहीं करते थे।" दुर्भाग्यवश मैक्समूलर के समय से ही प्राचीन भारतीय राजनीति के बारे में यह मिथ्या विचार बन गया कि हिन्दू साहित्य में मुख्यतः दिग्भ्रमित आदर्शवाद, अव्यावहारिक, आध्यात्मवाद और परलोक की ही युक्तिहीन बातों का विवेचन है। दूसरा कारण यह रहा कि कुछ प्राचीन लेखकों के इधर-उधर से उठा लिये गये उद्धरणों को ही हिन्दुओं के सम्पूर्ण विचारों का प्रतीक मान लिया गया। गैटेल इस तथ्य को स्वीकार कर प्राचीन भारतीय राजशास्त्र को स्वतन्त्र रूप में देखता है-"हिन्दू राज्य धर्मतन्त्रात्मक न थे। राज्य धार्मिक संगठन से स्वतन्त्र था और पुजारी प्रशासनिक कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करते थे... राजनीतिक दर्शन को ज्ञान की एक पृथक शाखा माना गया है, उसका विस्तृत साहित्य है और उसके रचयिता राजशास्त्र को सबसे महत्वपूर्ण शास्त्र मानते हैं।"[7,8]

कुछ पूर्वाग्रही पाश्चात्य विद्वानों के विपरीत 'राजनीतिक दर्शन' का रचयिता मैक्सी राजनीतिक विचारों व क्षेत्र में भारत के योगदान को स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है-"भारत का राजनीतिक इतिहास यूरोप के इतिहास से भी अधिक प्राचीन है। अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता की अनेक शताब्दियों में भारतीय उपमहाद्वीप ने प्रायः सभी प्रकार के छोटे और विशाल राज्यों के उदय और पतन को देखा। भारत में ग्रामीण गणतन्त्र से लेकर चन्द्रगुप्त और अशोक शासित मौर्य साम्राज्य थे, जो अपने काल में विश्व के महान राज्य थे। उनके मिस्र और यूनान से कूटनीतिक सम्बन्ध भी थे। ऐसे में यह विश्वास करना मुश्किल है कि इतने दीर्घकालीन साम्राज्य ने राजनीतिक विचारों को जन्म ही न दिया हो।" बाद में मैक्सी के तर्कपूर्ण विचार से अन्य विद्वान भी सहमत हुये और भारतीय राजनीति को गंभीरता से लिया।

देखा जाये तो प्राचीन भारत के सांस्कृतिक विकास में राजनीति का महत्वपूर्ण स्थान था। प्राचीन भारतीय विद्वान् राजनीति के तमाम सिद्धान्तों से बखूबी परिचित थे। प्राचीन विद्वानों ने विज्ञान और कलाओं का भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्गीकरण किया है। एक वर्गीकरण के अनुसार प्राविधिक विज्ञान विधाओं की संख्या 32 तथा कलाएँ 64 थीं। 32 विज्ञानों में एक अर्थशास्त्र भी था जिसका अभिप्राय आधुनिक अर्थशास्त्र और राजशास्त्र दोनों से था।

पाश्चात्य आलोचक प्राचीन भारतीय राजनीति के बारे में एक और सवाल उठाते रहे हैं कि प्राचीन हिन्दू लेखक कानून की सकारात्मक धारणा से अपरिचित थे। उनकी इस धारणा को भी नहीं माना जा सकता क्योंकि प्राचीन भारत में सभी चिन्तकों ने दण्डनीति का एकमत से समर्थन किया है। दण्डनीति, वस्तुतः कानून का ही एक भाग था। शुक्रनीति में एक जगह उल्लेख है कि कतिपय कानूनों को केवल राजा द्वारा ही लागू किया जाना चाहिए। चूंकि विद्वानों के अनुसार सकारात्मक कानून वह होता है जिसे प्रभुत्वपूर्ण राजनीतिक अधिकारी निर्मित व लागू करता है, शायद इसलिये भी एक भ्रम की स्थिति बनी।

इतना ही नहीं, संस्कृत साहित्य में भी राजशास्त्र के सिद्धान्तों एवं व्यवहारों पर अहम सामग्रियाँ भरी पड़ी हैं। अगर पाश्चात्य विद्वान इन सबकी गहन समीक्षा करते तो शायद उन्हें प्राचीन भारतीय राजनीति के विषय में कोई राय बनाने में सरलता होती। शायद उन तक इसकी सुलभता इसलिये भी नहीं हो पाई क्योंकि अधिकतर संस्कृत साहित्य का उस समय अंग्रेजी में अनुवाद नहीं हो सका था। संस्कृत साहित्य के राजनीतिक दर्शन पर प्रकाश डालते हुये बिनय कुमार सरकार ने लिखा है कि संस्कृत साहित्य की हर शाखा में राजनीतिक सिद्धान्तों और व्यवहार पर लेख हैं। साथ ही राजनीति व लोक प्रशासन पर कई विशिष्ट ग्रन्थ भी हैं, जिनका महत्व यूरोपीय देशों के साहित्य से भी अधिक है। लेकिन समस्या यह है कि उनमें से अधिकतर का अंग्रेजी में अनुवाद नहीं हुआ है।

विनय कुमार सरकार ने भारतीय राजनीतिक विचारधारा के जो प्रमुख सिद्धान्त गिनाये, वो इस प्रकार हैं

- राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजा के विचारों को जाने।
- राजा की आज्ञा मानना प्रजा का कर्तव्य है। प्रजा से अपेक्षा की जाती है कि वह प्रशासन में सहयोग दे और कानूनों का पालन करे।
- राजाओं को मन्त्रियों और परामर्शदाताओं से मार्गदर्शन ग्रहण करना चाहिए, लेकिन नियन्त्रित रूप में।
- किसी राजा के ऐसे सभी कार्य उचित हैं जो सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार उपयोगी हों।
- राजत्व एक लौकिक संस्था है जिस पर मन्त्रियों व जनता द्वारा संवैधानिक सीमाएं व प्रतिबन्ध लगे हैं।
- जहाँ तक सम्भव हो सके युद्ध मानवीय और वीरतापूर्ण ढंग से किया जाना चाहिए।
- शासितों को अत्याचारी शासन का विरोध करने और उसे उलट देने का अधिकार है।
- राज्य के द्वारा ही धर्म और अर्थ की प्राप्ति संभव है।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

सारांश में यह कह सकते हैं कि प्राचीन भारत में राजशास्त्र की चार विचारधाराओं का अस्तित्व था जो मनु, पराशर, वृहस्पति के मानने वालों के समूह में विभक्त था। जबकि शासन-कला पर अमूमन सात वृहद ग्रन्थ थे जिनके रचयिता भारद्वाज, विशालाक्ष, पाराशर, नारद, भीष्म, वातव्याधि और बहुदन्ति माने जाते हैं। अन्त में कह सकते हैं कि प्राचीन भारत में राजतन्त्र स्वेच्छाचारी नहीं बल्कि सीमित था। उस समय राजाओं के निर्वाचन की भी प्रथा थी और वे शासन भी मन्त्रियों तथा परामर्शदाताओं की सहायता से ही करते थे। वैदिक काल में सभा और समिति जैसी लोकप्रिय संस्थाएं थीं तो उत्तर वैदिककाल में गणतन्त्र की व्यवस्था थी।

भारत के प्राचीन राजशास्त्रियों ने राज्य के स्वरूप का प्रतिपादन 'सप्ताङ्ग सिद्धान्त' द्वारा किया है। हिन्दू समाज और हिन्दू राज्य के पीछे यह संकल्पना रही है कि ये दोनों सावयव हैं, इनके द्वारा राज्य की धारणा में आंगिक एकता पर बल दिया गया है। धर्मशास्त्रों, अर्थशास्त्रों और नीतिशास्त्रों में राज्य के सात अंगों का वर्णन मिलता है। राज्य के सात अंगों अथवा अवयवों की मनु, बृहस्पति, भीष्म, कौटिल्य, शुक्र आदि सभी आचार्यों ने माना है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राज्य की परिभाषा करते हुए कहा हैः- "राज्य सात अंगों अथवों तत्वों से मिलकर बना है। उसके अनुसार सात अंग अथवा प्रकृतियाँ ये हैं- स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र।"

अर्थशास्त्र , कौटिल्य या चाणक्य (चौथी शदी ईसापूर्व) द्वारा रचित संस्कृत का एक ग्रन्थ है।[1] इसमें राज्यव्यवस्था, कृषि, न्याय एवं राजनीति आदि के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है। अपने तरह का (राज्य-प्रबन्धन विषयक) यह प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसकी शैली उपदेशात्मक और सलाहात्मक (instructional) है।

यह प्राचीन भारतीय राजनीति का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसके रचनाकार का व्यक्तिनाम विष्णुगुप्त, गोत्रनाम कौटिल्य ('कुटिल' से व्युत्पन्न) और स्थानीय नाम चाणक्य (पिता का नाम 'चणक' होने से) था। अर्थशास्त्र (15.431) में लेखक का स्पष्ट कथन है:
येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदंकृतम् ॥ [2]
इस ग्रंथ की रचना उन आचार्य ने की जिन्होंने अन्याय तथा कुशासन से क्रुद्ध होकर नन्दों के हाथ में गए हुए शस्त्र, शास्त्र एवं पृथ्वी का शीघ्रता से उद्धार किया था।

चाणक्य सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य (323-298 ई.पू.) के महामंत्री थे। उन्होंने चंद्रगुप्त के प्रशासकीय उपयोग के लिए इस ग्रंथ की रचना की थी। यह मुख्यतः सूत्रशैली में लिखा हुआ है और संस्कृत के सूत्रसाहित्य के काल और परम्परा में रखा जा सकता है। यह शास्त्र अनावश्यक विस्तार से रहित, समझने और ग्रहण करने में सरल एवं कौटिल्य द्वारा उन शब्दों में रचा गया है जिनका अर्थ सुनिश्चित हो चुका है। (अर्थशास्त्र, 15.6)'

अर्थशास्त्र में समसामयिक राजनीति, अर्थनीति, विधि, समाजनीति, तथा धर्मादि पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इस विषय के जितने ग्रंथ अभी तक उपलब्ध हैं उनमें से वास्तविक जीवन का चित्रण करने के कारण यह सबसे अधिक मूल्यवान् है। इस शास्त्र के प्रकाश में न केवल धर्म, अर्थ और काम का प्रणयन और पालन होता है अपितु अधर्म, अनर्थ तथा अवांछनीय का शमन भी होता है (अर्थशास्त्र, 15.431)।

इस ग्रंथ की महत्ता को देखते हुए कई विद्वानों ने इसके पाठ, भाषांतर, व्याख्या और विवेचन पर बड़े परिश्रम के साथ बहुमूल्य कार्य किया है। शाम शास्त्री और गणपति शास्त्री का उल्लेख किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त यूरोपीय विद्वानों में हर्मान जाकोबी (ऑन दि अथॉरिटी ऑव कौटिलीय, इं.ए., 1918), ए. हिलेब्रांड्ट, डॉ॰ जॉली, प्रो॰ए.बी. कीथ (ज.रा.ए.सी.) आदि के नाम आदर के साथ लिए जा सकते हैं। अन्य भारतीय विद्वानों में डॉ॰ नरेन्द्रनाथ ला (स्टडीज इन ऐंशेंट हिंदू पॉलिटी, 1914), श्री प्रमथनाथ बनर्जी (पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन इन ऐंशेंट इंडिया), डॉ॰ काशीप्रसाद जायसवाल (हिंदू पॉलिटी), प्रो॰ विनयकुमार सरकार (दि पाज़िटिव बैकग्राउंड ऑव् हिंदू सोशियोलॉजी), प्रो॰ नारायणचंद्र वंद्योपाध्याय, डॉ॰ प्राणनाथ विद्यालंकार आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

यद्यपि कतिपय प्राचीन लेखकों ने अपने ग्रंथों में अर्थशास्त्र से अवतरण दिए हैं और कौटिल्य का उल्लेख किया है, तथापि यह ग्रंथ लुप्त हो चुका था। 1904 ई. में तंजोर के एक पंडित ने भट्टस्वामी के अपूर्ण भाष्य के साथ अर्थशास्त्र का हस्तलेख मैसूर राज्य पुस्तकालय के अध्यक्ष श्री आर. शाम शास्त्री को दिया। श्री शास्त्री ने पहले इसका अंशतः अंग्रेजी भाषान्तर 1905 ई. में "इंडियन ऐंटिक्वेरी" तथा "मैसूर रिव्यू" (1906-1909) में प्रकाशित किया। इसके पश्चात् इस ग्रंथ के दो हस्तलेख म्यूनिख लाइब्रेरी में पjay हुए और एक संभवत: कलकत्ता में। तदनन्तर शाम शास्त्री, गणपति शास्त्री, यदुवीर शास्त्री आदि द्वारा अर्थशास्त्र के कई संस्करण प्रकाशित हुए। शाम शास्त्री द्वारा अंग्रेजी भाषान्तर का चतुर्थ संस्करण (1929 ई.) प्रामाणिक माना जाता है।

पुस्तक के प्रकाशन के साथ ही भारत तथा पाश्चात्य देशों में हलचल-सी मच गई क्योंकि इसमें शासन-विज्ञान के उन अद्‌भुत तत्त्वों का वर्णन पाया गया, जिनके सम्बन्ध में भारतीयों को सर्वथा अनभिज्ञ समझा जाता था। पाश्चात्य विद्वान फ्लीट, जौली आदि ने इस पुस्तक को एक 'अत्यन्त महत्त्वपूर्ण' ग्रंथ बतलाया और इसे भारत के प्राचीन इतिहास के निर्माण में परम सहायक साधन स्वीकार किया।

ग्रंथ के अंत में दिए चाणक्यसूत्र (15.1) में अर्थशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार हुई है :

मनुष्यों की वृत्ति को अर्थ कहते हैं। मनुष्यों से संयुक्त भूमि ही अर्थ है। उसकी प्राप्ति तथा पालन के उपायों की विवेचना करनेवाले शास्त्र को अर्थशास्त्र कहते हैं।

इसके मुख्य विभाग हैं :

(1) विनयाधिकरण, (2) अध्यक्षप्रचार, (3) धर्मस्थीयाधिकरण, (4) कंटकशोधन, (5) वृत्ताधिकरण,	(6) योन्यधिकरण, (7) षाड्गुण्य, (8) व्यसनाधिकरण, (9) अभियास्यत्कर्माधिकरणा, (10) संग्रामाधिकरण,	(11) संघवृत्ताधिकरण, (12) आबलीयसाधिकरण, (13) दुर्गलम्भोपायाधिकरण, (14) औपनिषदिकाधिकरण और (15) तंत्रयुक्त्यधिकरण

इन अधिकरणों के अनेक उपविभाग (15 अधिकरण, 150 अध्याय, 180 उपविभाग तथा 6,000 श्लोक) हैं।

अमात्य : अर्थशास्त्र के अनुसार प्राचीन हिन्दू राज्य के पदाधिकारी

पद	अंग्रेजी		पद	अंग्रेजी
राजा	King		युवराज	Crown prince
सेनापति	Chief, armed forces		परिषद्	Council
नागरिक	City manager		पौरव्य वाहारिक	City overseer
मन्त्री	Counselor		कार्मिक	Works officer
संनिधाता	Treasurer		कार्मान्तरिक	Director, factories
अन्तेपाल	Frontier commander		अन्तर विंसक	Head, guards
दौवारिक	Chief guard		गोप	Revenue officer
पुरोहित	Chaplain		करणिक	Accounts officer
प्रशास्ता	Administrator		नायक	Commander
उपयुक्त	Junior officer		प्रदेष्टा	Magistrate
शून्यपाल	Regent		अध्यक्ष	Superintendent

परिणाम

अर्थशास्त्र में समसामयिक राजनीति, अर्थनीति, विधि, समाजनीति, तथा धर्मादि पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इस विषय के जितने ग्रंथ अभी तक उपलब्ध हैं उनमें से वास्तविक जीवन का चित्रण करने के कारण यह सबसे अधिक मूल्यवान् है। इस शास्त्र के प्रकाश में न केवल धर्म, अर्थ और काम का प्रणयन और पालन होता है अपितु अधर्म, अनर्थ तथा अवांछनीय का शमन भी होता है (अर्थशास्त्र, 15.431)।

इस ग्रंथ की महत्ता को देखते हुए कई विद्वानों ने इसके पाठ, भाषांतर, व्याख्या और विवेचन पर बड़े परिश्रम के साथ बहुमूल्य कार्य किया है। शाम शास्त्री और गणपति शास्त्री का उल्लेख किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त यूरोपीय विद्वानों में हर्मान जाकोबी (ऑन दि अथॉरिटी ऑव कौटिलीय, इं.ए., 1918), ए. हिलेब्रांड्ट, डॉ॰ जॉली, प्रो॰ ए.बी. कीथ (ज.रा.ए.सी.) आदि के नाम आदर के साथ लिए जा सकते हैं। अन्य भारतीय विद्वानों में डॉ॰ नरेंद्रनाथ ला (स्टडीज इन ऐंशेंट हिंदू पॉलिटी, 1914), श्री प्रेमथनाथ बनर्जी (पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन इन ऐंशेंट इंडिया), डॉ॰ काशीप्रसाद जायसवाल (हिंदू पॉलिटी), प्रो॰ विनयकुमार सरकार (दि पाज़िटिव बैकग्राउंड ऑव् हिंदू सोशियोलॉजी), प्रो॰ नारायणचंद्र वन्द्योपाध्याय, डॉ॰ प्राणनाथ विद्यालंकार आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' राजनीतिक सिद्धांतों की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इस संबंध में यह प्रश्न उठता है कि कौटिल्य ने अपनी पुस्तक का नाम 'अर्थशास्त्र' क्यों रखा? प्राचीनकाल में 'अर्थशास्त्र' शब्द का प्रयोग एक व्यापक अर्थ में होता था। इसके अन्तर्गत मूलतः राजनीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कानून आदि का अध्ययन किया जाता था। आचार्य कौटिल्य की दृष्टि में राजनीति शास्त्र

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

एक स्वतंत्र शास्त्र है और आन्वीक्षिकी (दर्शन), त्रयी (वेद) तथा वार्ता एंव कानून आदि उसकी शाखाएँ हैं। सम्पूर्ण समाज की रक्षा राजनीति या दण्ड व्यवस्था से होती है या रक्षित प्रजा ही अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकती है।

उस समय अर्थशास्त्र को राजनीति और प्रशासन का शास्त्र माना जाता था। महाभारत में इस संबंध में एक प्रसंग है, जिसमें अर्जुन को अर्थशास्त्र का विशेषज्ञ माना गया है।
समाप्तवचने तस्मिन्नर्थशास्त्र विशारदः।
पार्थो धर्मार्थतत्त्वज्ञो जगौ वाक्यमनन्द्रितः॥ (3)

निश्चित रूप से कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी राजशास्त्र के रूप में लिया गया होगा, यों उसने अर्थ की कई व्याख्याएँ की हैं। कौटिल्य ने कहा है— मनुष्याणां वृतिरर्थः (4) अर्थात् मनुष्यों की जीविका को 'अर्थ' कहते हैं। अर्थशास्त्र की व्याख्या करते हुए उसने कहा है— तस्या पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थ-शास्त्रमिति। (5) (मनुष्यों से युक्त भूमि को प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने वाले उपायों का निरूपण करने वाला शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है।) इस प्रकार यह भी स्पष्ट है कि 'अर्थशास्त्र' के अन्तर्गत राजव्यवस्था और अर्थव्यवस्था दोनों से संबंधित सिद्धांतों का समावेश है। वस्तुतः कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' को केवल राजव्यवस्था और अर्थव्यवस्था का शास्त्र कहना उपयुक्त नहीं होगा। वास्तव में, यह अर्थव्यवस्था, राजव्यस्था, विधि व्यवस्था, समाज व्यवस्था और धर्म व्यवस्था से संबंधित शास्त्र है।[2,3]

कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के पूर्व और भी कई अर्थशास्त्रों की रचना की गयी थी, यद्यपि उनकी पांडुलिपियाँ उपलब्ध नहीं हैं। भारत में प्राचीन काल से ही अर्थ, काम और धर्म के संयोग और सम्मिलन के लिए प्रयास किये जाते रहे हैं और उसके लिये शास्त्रों, स्मृतियों और पुराणों में विशद् चर्चाएँ की गयी हैं। कौटिल्य ने भी 'अर्थशास्त्र' में अर्थ, काम और धर्म की प्राप्ति के उपायों की व्याख्या की है। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में भी अर्थ, धर्म और काम के संबंध में सूत्रों की रचना की गयी है।

अपने पूर्व अर्थशास्त्रों की रचना की बात स्वयं कौटिल्य ने भी स्वीकार किया है। अपने 'अर्थशास्त्र' में कई सन्दर्भों में उसने आचार्य वृहस्पति, भारद्वाज, शुक्राचार्य, पराशर, पिशुन, विशालाक्ष आदि आचार्यों का उल्लेख किया है। कौटिल्य के पूर्व अनेक आचार्यों के ग्रंथों का नामकरण दंडनीति के रूप में किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कौटिल्य के पूर्व शास्त्र दंडनीति कहे जाते थे और वे अर्थशास्त्र के समरूप होते थे। परन्तु जैसा कि अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया है कि दंडनीति और अर्थशास्त्र दोनों समरूप नहीं हैं। यू. एन. घोषाल के कथनानुसार अर्थशास्त्र ज्यादा व्यापक शास्त्र है, जबकि दंडनीति मात्र उसकी शाखा है। (6)

कौटिल्य के पाश्चात् लिखे गये शास्त्र 'नीतिशास्त्र' के नाम से विख्यात हुए, जैसे कामंदकनीतिसार, नीतिवाक्यामृत। वैसे कई विद्वानों ने अर्थशास्त्र को नीतिशास्त्र की अपेक्षा ज्यादा व्यापक माना है। परन्तु, अधिकांश विद्वानों की राय में नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र दोनों समरूप हैं तथा दोनों के विषय क्षेत्र भी एक ही हैं। स्वयं कामंदक ने नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र को समरूप माना है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के पूर्व और उसके बाद भी 'अर्थशास्त्र' जैसे शास्त्रों की रचना की गयी।

इस संबंध में ऐसे विद्वानों की अच्छी-खासी संख्या है जो यह मानते हैं कि कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' का रचनाकार नहीं था। ऐसे विद्वानों में पाश्चात्य विद्वानों की संख्या ज्यादा है। स्टेन, जॉली, विंटरनीज व कीथ इस प्रकार के विचार के प्रतिपादक हैं। भारतीय विद्वान आर. जी. भण्डारकर ने भी इसका समर्थन किया है। भंडारकर ने कहा है कि पतंजलि ने महाभाष्य में कौटिल्य का उल्लेख नहीं किया है। 'अर्थशास्त्र' के रचयिता के रूप में कौटिल्य को नहीं मान्यता देनेवालों ने अपने मत के समर्थन में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये हैं—

- (१) 'अर्थशास्त्र' में मौर्य साम्राज्य या पाटलिपुत्र का कहीं कोई जिक्र नहीं मिलता है। यदि चन्द्रगुप्त का मंत्री कौटिल्य अर्थशास्त्र का रचनाकार होता तो 'अर्थशास्त्र' में उसका कहीं-न-कहीं कुछ जिक्र करता ही।

- (२) इस संबंध में यह कहा जाता है कि 'अर्थशास्त्र' की विषय-वस्तु जिस प्रकार की है, उससे यह नहीं प्रतीत होता है कि इसका रचनाकार कोई व्यावहारिक राजनीतिज्ञ होगा। निःसन्देह कोई शास्त्रीय पंडित ने ही इसकी रचना की होगी।

- (३) चन्द्रगुप्त मौर्य का मंत्री कौटिल्य यदि 'अर्थशास्त्र' का रचनाकार होता तो उसके सूत्र एवं उक्तियाँ बड़े राज्यों के संबंध में होते, परन्तु 'अर्थशास्त्र' के उद्धरण एवं उक्तियाँ लघु एवं मध्यम राज्यों के लिये सम्बोधित हैं। अतः स्पष्ट है कि 'अर्थशास्त्र' का रचनाकार कौटिल्य नहीं था। डॉ॰ बेनी प्रसाद के अनुसार 'अर्थशास्त्र' में जिस आकार या स्वरूप के राज्य का जिक्र किया गया है, निःसन्देह वह मौर्य, कलिंग या आंध्र साम्राज्य के आधार से मेल नहीं खाता है। 7

- (४) विंटरनीज ने कहा है कि मेगास्थनीज ने, जो लम्बे अरसे तक चन्द्रगुप्त के दरबार में रहा और जिसने अपनी पुस्तक 'इंडिका' में चन्द्रगुप्त के दरबार के संबंध में बहुत कुछ लिखा है, कौटिल्य के बारे में कुछ नहीं लिखा है और न ही उसकी पुस्तक 'अर्थशास्त्र' की कहीं कोई चर्चा की है। यदि 'अर्थशास्त्र' जैसे विख्यात शास्त्र का लेखक कौटिल्य चन्द्रगुप्त का मंत्री होता तो मेगास्थनीज की 'इंडिका' में उसका जिक्र अवश्य किया जाता।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

- (५) मेगास्थनीज और कौटिल्य के कई विवरणों में मेल नहीं खाता। उदाहरण के लिए मेगास्थनीज के अनुसार उस समय भारतीय रासायनिक प्रक्रिया से अवगत नहीं थे, भारतवासियों को केवल पाँच धातुओं की जानकारी थी, जबकि 'अर्थशास्त्र' में इन सबों का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रशासकीय संरचना, उद्योग-व्यवस्था, वित्त-व्यवस्था आदि के संबंध में भी मेगास्थनीज और 'अर्थशास्त्र' का लेखक चन्द्रगुप्त मौर्य का मंत्री कौटिल्य नहीं हो सकता है।

पुस्तक की समाप्ति पर स्पष्ट रूप से लिखा गया है-
"प्राय: भाष्यकारों का शास्त्रों के अर्थ में परस्पर मतभेद देखकर विष्णुगुप्त ने स्वयं ही सूत्रों को लिखा और स्वयं ही उनका भाष्य भी किया।" (15/1)

साथ ही यह भी लिखा गया है:
"इस शास्त्र (अर्थशास्त्र) का प्रणयन उसने किया है, जिसने अपने क्रोध द्वारा नन्दों के राज्य को नष्ट करके शास्त्र, शस्त्र और भूमि का उद्धार किया।' (15/1)

विष्णु पुराण में इस घटना की चर्चा इस तरह की गई है:
"महापदम-नन्द नाम का एक राजा था। उसके नौ पुत्रों ने सौ वर्षों तक राज्य किया। उन नन्दों को कौटिल्य नाम के ब्राह्मण ने मार दिया। उनकी मृत्यु के बाद मौर्यों ने पृथ्वी पर राज्य किया और कौटिल्य ने स्वयं प्रथम चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक किया। चन्द्रगुप्त का पुत्र बिन्दुसार हुआ और बिन्दुसार का पुत्र अशोकवर्धन हुआ।" (4/24)

'नीतिसार' के कर्ता कामन्दक ने भी घटना की पुष्टि करते हुए लिखा है:

> "इन्द्र के समान शक्तिशाली आचार्य विष्णुगुप्त ने अकेले ही वज्र-सदृश अपनी मन्त्र-शक्ति द्वारा पर्वत-तुल्य महाराज नन्द का नाश कर दिया और उसके स्थान पर मनुष्यों में चन्द्रमा के समान चन्द्रगुप्त को पृथ्वी के शासन पर अधिष्ठित किया।"

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि विष्णुगुप्त और कौटिल्य एक ही व्यक्ति थे। 'अर्थशास्त्र' में ही द्वितीय अधिकरण के दशम अध्याय के अन्त में पुस्तक के रचयिता का नाम 'कौटिल्य' बताया गया है:
"सब शास्त्रों का अनुशीलन करके और उनका प्रयोग भी जान करके कौटिल्य ने राजा (चन्द्रगुप्त) के लिए इस शासन-विधि (अर्थशास्त्र) का निर्माण किया है।" (2/10)

पुस्तक के आरम्भ में 'कौटिल्येन कृतं शास्त्रम्' तथा प्रत्येक अध्याय के अन्त में 'इति कौटिलीयेऽर्थशास्त्रे' लिखकर ग्रन्थकार ने अपने 'कौटिल्य नाम को अधिक विख्यात किया है। जहां-जहां अन्य आचार्यों के मत का प्रतिपादन किया है, अन्त में 'इति कौटिल्य' अर्थात् कौटिल्य का मत है-इस तरह कहकर कौटिल्य नाम के लिए अपना अधिक पक्षपात प्रदर्शित किया है।

परन्तु यह सर्वथा निर्विवाद है कि विष्णुगुप्त तथा कौटिल्य अभिन्न व्यक्ति थे। उत्तरकालीन दण्डी कवि ने इसे आचार्य विष्णुगुप्त नाम से यदि कहा है, तो बाणभट्ट ने इसे ही कौटिल्य नाम से पुकारा है। दोनों का कथन है कि इस आचार्य ने 'दण्डनीति' अथवा 'अर्थशास्त्र' की रचना की।

पंचतन्त्र में इसी आचार्य का नाम चाणक्य दिया गया है, जो अर्थशास्त्र का रचयिता है। कवि विशाखदत्त-प्रणीत सुप्रसिद्ध नाटक 'मुद्राराक्षस' में चाणक्य को कभी कौटिल्य तथा कभी विष्णुगुप्त नाम से सम्बोधित किया गया है।

'अर्थशास्त्र' की रचना 'शासन-विधि' के रूप में प्रथम मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के लिए की गई। अत: इसकी रचना का काल वही मानना उचित है, जो सम्राट चन्द्रगुप्त का काल है। पुरातत्त्ववेत्ता विद्वानों ने यह काल 321 ई.पू. से 296 ई.पू. तक निश्चित किया है। कई अन्य विद्वान सम्राट सेण्ड्राकोटस (जो यूनानी इतिहास में सम्राट चन्द्रगुप्त का पर्यायवाची है) के आधार पर निश्चित की हुई इस तिथि को स्वीकार नहीं करते।

जैसे ऊपर कहा गया है, इसका मुख्य विषय शासन-विधि अथवा शासन-विज्ञान है: "कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधि: कृत:।" (कौटिल्य ने राजाओं के लिये शासन विधि की रचना की है।) इन शब्दों से स्पष्ट है कि आचार्य ने इसकी रचना राजनीति-शास्त्र तथा विशेषतया शासन-प्रबन्ध की विधि के रूप में की। अर्थशास्त्र की विषय-सूची को देखने से (जहां अमात्योत्पत्ति, मन्त्राधिकार, दूत-प्रणिधि, अध्यक्ष-नियुक्ति, दण्डकर्म, षाड्गुण्यसमुद्देश्य, राजराज्ययो: व्यसन-चिन्ता, बलोपादान-काल, स्कन्धावार-निवेश, कूट-युद्ध, मन्त्र-युद्ध इत्यादि विषयों का उल्लेख है) यह सर्वथा प्रमाणित हो जाता है कि इसे आजकल कहे जाने वाले अर्थशास्त्र (इकोनोमिक्स) की पुस्तक कहना भूल है। प्रथम अधिकरण के प्रारम्भ में ही स्वयं आचार्य ने इसे 'दण्डनीति' नाम से सूचित किया है।

शुक्राचार्य ने दण्डनीति को इतनी महत्त्वपूर्ण विद्या बतलाया है कि इसमें अन्य सब विद्याओं का अन्तर्भाव मान लिया है- क्योंकि 'शस्त्रेण रक्षिते देशे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते' की उक्ति के अनुसार शस्त्र (दण्ड) द्वारा सुशासित तथा सुरक्षित देश में ही वेद आदि अन्य शास्त्रों की चिन्ता या अनुशीलन हो सकता है। अत: दण्डनीति को अन्य सब विद्याओं की आधारभूत विद्या के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है और वही दण्डनीति अर्थशास्त्र है।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

जिसे आजकल अर्थशास्त्र (economics) कहा जाता है, उसके लिए 'वार्ता' शब्द का प्रयोग किया गया है, यद्यपि यह शब्द पूर्णतया अर्थशास्त्र का द्योतक नहीं। कौटिल्य ने वार्ता के तीन अंग कहे हैं - कृषि, वाणिज्य तथा पशु-पालन, जिनसे प्राय: वृत्ति या जीविका का उपार्जन किया जाता था। मनु, याज्ञवल्क्य आदि शास्त्रकारों ने भी इन तीन अंगों वाले वार्ताशास्त्र को स्वीकार किया है। पीछे शुक्राचार्य ने इस वार्ता में कुसीद (बैंकिंग) को भी वृत्ति के साधन-रूप में सम्मिलित कर दिया है। परन्तु अर्थशास्त्र को सभी शास्त्रकारों ने दण्डनीति, राजनीति अथवा शासनविज्ञान के रूप में ही वर्णित किया है। अत: 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' को राजनीति की पुस्तक समझना ही ठीक होगा न कि सम्पत्तिशास्त्र की पुस्तक। वैसे इसमें कहीं-कहीं सम्पत्तिशास्त्र के धनोत्पादन, धनोपभोग तथा धन-विनिमय, धन-विभाजन आदि विषयों की भी प्रासंगिक चर्चा की गई है।

'कौटिल्य अर्थशास्त्र' के प्रथम अधिकरण का प्रारम्भिक वचन इस सम्बन्ध में अधिक प्रकाश डालने वाला है:
पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्ये: प्रस्तावितानि प्रायश: तानि संहृत्य एकमिदमर्थशास्त्र कृतम्।

अर्थात्-प्राचीन आचार्यों ने पृथ्वी जीतने और पालन के उपाय बतलाने वाले जितने अर्थशास्त्र लिखे हैं, प्रायः उन सबका सार लेकर इस एक अर्थशास्त्र का निर्माण किया गया है।

यह उद्धरण अर्थशास्त्र के विषय को जहां स्पष्ट करता है, वहां इस सत्य को भी प्रकाशित करता है कि 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' से पूर्व अनेक आचार्यों ने अर्थशास्त्र की रचनाएं कीं, जिनका उद्देश्य पृथ्वी-विजय तथा उसके पालन के उपायों का प्रतिपादन करना था। उन आचार्यों तथा उनके सम्प्रदायों के कुछ नामों का निर्देशन 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' में किया गया है, यद्यपि उनकी कृतियां आज उपलब्ध भी नहीं होतीं। ये नाम निम्नलिखित है:
(1) मानव - मनु के अनुयायी
(2) बार्हस्पत्य - बृहस्पति के अनुयायी
(3) औशनस - उशना अथवा शुक्राचार्य के मतानुयायी
(4) भारद्वाज (द्रोणाचार्य)
(5) विशालाक्ष
(6) पराशर
(7) पिशुन (नारद)
(8) कौणपदन्त (भीष्म)
(9) वाताव्याधि (उद्धव)
(10) बाहुदन्ती-पुत्र (इन्द्र)।

अर्थशास्त्र के इन दस सम्प्रदायों के आचार्यों में प्राय: सभी के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ ज्ञात है, परन्तु विशालाक्ष के बारे में बहुत कम परिचय प्राप्त होता है। इन नामों से यह तो अत्यन्त स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र नीतिशास्त्र के प्रति अनेक महान विचारकों तथा दार्शनिकों का ध्यान गया और इस विषय पर एक उज्ज्वल साहित्य का निर्माण हुआ। आज वह साहित्य लुप्त हो चुका है। अनेक विदेशी आक्रमणों तथा राज्यक्रान्तियों के कारण इस साहित्य का नाम-मात्र शेष रह गया है, परन्तु जितना भी साहित्य अवशिष्ट है वह एक विस्तृत अर्थशास्त्रीय परम्परा का संकेत करता है।
'कौटिल्य अर्थशास्त्र' में इन पूर्वाचार्यों के विभिन्न मतों का स्थान-स्थान पर संग्रह किया गया है और उनके शासन-सम्बन्धी सिद्धान्तों का विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है।

> इस अर्थशास्त्र में एक ऐसी शासन-पद्धति का विधान किया गया है जिसमें राजा या शासक प्रजा का कल्याण सम्पादन करने के लिए शासन करता है। राजा स्वेच्छाचारी होकर शासन नहीं कर सकता। उसे मन्त्रिपरिषद् की सहायता प्राप्त करके ही प्रजा पर शासन करना होता है। राज्य-पुरोहित राजा पर अंकुश के समान है, जो धर्म-मार्ग से च्युत होने पर राजा का नियन्त्रण कर सकता है और उसे कर्तव्य-पालन के लिए विवश कर सकता है।[4,5]
>
> सर्वलोकहितकारी राष्ट्र का जो स्वरूप कौटिल्य को अभिप्रेत है, वह 'अर्थशास्त्र' के निम्नलिखित वचन से स्पष्ट है-
> प्रजा सुखे सुखं राज्ञ: प्रजानां च हिते हितम्।
> नात्मप्रियं प्रियं राज्ञ: प्रजानां तु प्रियं प्रियम्॥ (1/19)
>
> अर्थात्-प्रजा के सुख में राजा का सुख है, प्रजाके हित में उसका हित है। राजा का अपना प्रिय (स्वार्थ) कुछ नहीं है, प्रजा का प्रिय ही उसका प्रिय है।

निष्कर्ष

400 ई० सन् के लगभग कामन्दक ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र के आधार पर कामन्दकीय नीतिसार नामक 20 सर्गों में विभक्त काव्यरूप एक अर्थशास्त्र लिखा था। यह नैतिकता और विदेश-नीति के सिद्धान्तों पर भी विचार करता है।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

सोमदेव सूरि का नीतिवाक्यामृत, हेमचन्द्र का लघु अर्थनीति, भोज का युक्तिकल्पतरु, शुक्र का शुक्रनीति आदि कुछ दूसरे सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्र हैं, जिनको नीतिशास्त्र के व्यावहारिक पक्ष की व्याख्या करने वाले ग्रन्थों के अन्तर्गत भी गिना जा सकता है। चाणक्यनीतिदर्पण, नीतिश्लोकों का अव्यवस्थित संग्रह है।[8]

संदर्भ

1. Roger Boesche (2002). The First Great Political Realist: Kautilya and His Arthashastra. Lexington Books. पृ॰ 7. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-0739104019. [...] is classically expressed in Indian literature in the Arthashastra of Kautilya
Siva Kumar, N.; Rao, U. S. (April 1996). "Guidelines for value based management in Kautilya's Arthashastra". Journal of Business Ethics. 15 (4): 415–423. S2CID 153463180. डीओआइ:10.1007/BF00380362. The paper develops value based management guidelines from the famous Indian treatise on management, Kautilya's Arthashastra.
2. ↑ कौटिल्य अर्थशास्त्र का हिन्दी भाषानुवाद (प्राणनाथ विद्यालङ्कार)
3. ↑ JS Rajput (2012), Seven Social Sins: The Contemporary Relevance, Allied, ISBN 978-8184247985, pages 28-29
4. अर्थ - चार पुरुषार्थों में से एक
5. चाणक्यनीति - चाणक्य द्वारा रचित नीतिग्रन्थ
6. नीतिसार -- 'कामंदक' द्वारा रचित यह ग्रंथ कौटिल्य के अर्थशास्त्र के सारभूत सिद्धांतों (मुख्यत: राजनीति विद्या) का प्रतिपादन करता है।
7. भारतीय राजनय का इतिहास
8. द प्रिंस - मकियावेली कृत राजनीति की पुस्तक